Dr. Purnima Singh
Department of Political Science
B.A part I. Paper II
Indian political thought
Topic - Swami Dayanand Saraswati
Lecture - 31

स्वामी दयानन्द सरस्वती (1824 - 1883) (1)

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती आर्य समाज के संस्थापक भारतीय संस्कृति के वैदिक संरक्षक और सत्य के अन्वेषक थे। उन्होंने भारत के गौरवपूर्ण अतीत को आलोकित किया और देशवासियों को अपनी दूरदर्शिता से ऊपर उठकर भविष्य की ओर बढ़ने की प्रेरणा दी। उन्होंने सर्वप्रथम 'वेदों की ओर लौटो' का सन्देश दिया। वे एक साथ सन्त, समाज-सुधारक और देश भक्त थे।

स्वामीजी का जन्म (1824) में काठियावाड़ की मौरवी रियासत के टंकारा कस्बे में अत्यन्त धार्मिक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनके बचपन का नाम मूलशंकर था। बाल्यकाल से ही उनमें मूर्ति-पूजा और धार्मिक कर्मकाण्ड के प्रति अविश्वास जाग्रत हो गया और कम उम्र में अपनी बहन तथा चाचा की मृत्यु के आघातों व अन्य घटनाओं से दुखित हो, उन्होंने मुक्ति मार्ग खोजने का निश्चय किया अतः 21 वर्ष की आयु में वैवाहिक जीवन के बन्धनों से बचने के लिए घर से निकल भागे। 1845 से 1860 तक लगभग 15 वर्ष तक वे ज्ञान और सत्य की खोज में घूमते रहे। 1860 में वे मथुरा में स्वामी विरजानन्द के शिष्य रहे। स्वामी विरजानन्द प्राचीन विद्याओं के प्रसिद्ध विद्वान थे, शिक्षक और स्वतन्त्र चिन्तक थे। वे मूर्तिपूजा, कुसंस्कार और

बहुदेववाद के विरोधी थे। उन्हीं से उन्हें 'स्वामी दयानन्द' का नाम प्राप्त हुआ। 1863 में धर्मोपदेश के लिए विदा करते हुए उन्हें गुरु ने सन्देश दिया: "देश का उपकार करो। सत्यशास्त्रों का उद्धार करो। मत-मतान्तरों की अविद्या को मिटाओ और वैदिक धर्म फैलाओ।"

गुरु के आदेशों के अनुसार स्वामीजी ने 1864 से सार्वजनिक रूप से उपदेश देना प्रारम्भ किया जो 1883 में उनकी मृत्यु के साथ ही समाप्त हुआ। इस अवधि में वे सम्पूर्ण भारत की यात्रा करते रहे, वाद-विवाद करते रहे अपने विचारों का प्रचार करते रहे और वैदिक धर्म का प्रचार करते रहे। बौद्धिक प्रतिभा, संस्कृत विद्या के धनी तथा प्रभावशाली वक्ता के रूप में उनके विचारों ने समकालीन जनता को प्रभावित किया। हिन्दी भाषा के माध्यम से उन्होंने देश में नव-जागरण का शङ्ख फूँका। उनके निर्भय और त्यागमय जीवन से प्रेरणा पाकर हजारों आर्य नर-नारी भारत के स्वाधीनता संग्राम में कूद पड़े। एक समय ऐसा भी रहा जब आर्य समाज और कांग्रेस दोनों एक-दूसरे के पूरक बन गये। यह उनकी महान उपलब्धि थी।

राजनीतिक विचारों के दार्शनिक आधार और भारतीय राष्ट्रवाद

स्वामी दयानन्द मुख्य रूप से राजनीतिज्ञ न होकर एक दार्शनिक और धार्मिक तथा सामाजिक चिन्तक थे और यही कारण है कि उनके राजनीतिक विचारों का निर्माण दार्शनिक आधारों पर ही हुआ। उन्होंने राष्ट्र और समाज को वेदों के आधार पर स्थापित करने का

प्रयत्न किया। उनका मत था कि "यदि भारतीय वेदों के अनुसार अपना आचरण करें तो उनकी हीनता की भावना जाती रहे।" वे पक्के एकेश्वरवादी थे। उनके अनुसार ईश्वर निर्गुण ब्रह्म नहीं है बल्कि वह सभी मंगलमय गुणों का भण्डार है। उन्होंने किसी नवीन धर्म का प्रतिपादन नहीं किया बल्कि उनके विश्वासों का आधार विशुद्ध वेदान्त ही रहा। स्वामीजी आस्तिक थे। उनके अनुसार वेद में केवल धर्म की ही बातें नहीं हैं, उनमें विज्ञान की भी सारी बातें हैं। वे स्वतन्त्रवादी थे और अपने विचारों को स्पष्ट रूप से लोगों के समक्ष रखा। संक्षेप में उनके समस्त चिन्तन का मूल स्रोत और आधार वेद है।

स्वामीजी तिलक, गाँधी आदि के समान राजनीतिक दार्शनिक नहीं थे और न ही प्रत्यक्ष रूप में भारत के स्वतन्त्रता संग्राम के साथ जुड़े हुए थे। फिर भी, उन्होंने भारतीयों के हृदय में स्वधर्म और स्वदेश के प्रति स्वाभिमान उत्पन्न करने और देश में नवजागरण का मन्त्र फूँकने का महान कार्य किया। वे वास्तव में 'भारतीय राष्ट्रवाद के अनन्य पुजारी' थे तथा स्वाधीनता की नैतिक तथा बौद्धिक नींव तैयार की। उनके राष्ट्रवादी विचार अग्र हैं

1) स्वामी दयानन्द ने ऐसे समय में भारतीय राष्ट्रवाद में प्राण फूँके और देशवासियों को नवजागरण का सन्देश दिया जब भारत पर ब्रिटिश साम्राज्य का शिकंजा कसता जा रहा था, ईसाई सभ्यता देश की पुरातन संस्कृति को भारी नुकसान पहुँचा रही थी और अनेक अग्रणी समाज-सुधारक भी ईसाई प्रभाव से आक्रान्त थे। ऐसे विकट और अवसादग्रस्त समय में महर्षि दयानन्द हिन्दू पुनरुत्थानवाद के उग्र प्रवक्ता बने।

दयानन्द ने देशवासियों के सम्मुख भारत की महिमा के गीत गाये और कहा कि आर्यवर्त (भारत) एक ऐसा देश है जिसके समान भूगोल में (विश्व में) कोई दूसरा देश नहीं है। भारत देश ही सच्चा "पारस मणि" है जिसे "लोहे रूप दरिद्र विदेशी" छूने के साथ ही सुवर्ण अर्थात धनाढ्य हो जाते हैं।

दयानन्द ने भारतीयों के हृदय में यह भाव करने का अथक प्रयास किया कि आर्य लोग ही ईश्वर के प्रिय लोग हैं, वेद ही उनकी वाणी है और भारत ही ईश्वर का प्रिय देश है। अन्य सारे धर्म अपूर्ण हैं तथा आर्य समाज और देशवासियों का कर्तव्य है कि दूसरे धर्मों के मानने वालों को हिन्दु बनाये। वास्तव में "दयानन्द प्रथम हिन्दु समाज सुधारक थे जिन्होंने बचाव की नीति छोड़कर हमला शुरू कर दिया, जिन्होंने हिन्दु धर्म को ईसाई और मुसलमान आलोचकों के हमले से बचाने का बचाव उनसे उनकी ही जमीन पर लड़ना स्वीकार किया, ताकि उन्हें अपनी स्थिति बचाने का फिक्र हो। उन्होंने सन्देश दिया कि केवल वैदिक धर्म ही सत्य और सार्वदेशिक है। उन्होंने नारा दिया कि "वेदों के युग में लौट चलो।"

हिन्दु पुनरुत्थानवाद के माध्यम से भारतीय राष्ट्रवाद को जगाने के लिए स्वामी दयानन्द ने अविवेक, अन्धविश्वासों और रूढ़िवादिता से टकरा लिया तथा सत्य के मन्दिर की स्थापना करनी चाही। उन्होंने आर्य समाज के सामाजिक आचार और नैतिक सिद्धान्तों की जो संहिता बनायी उसमें भी जन्मना, जाति-पाँति, मनुष्यों में असमानता और स्त्रियों तथा पुरुषों में विषमता की गुंजाइश नहीं थी।

रवीन्द्रनाथ टैगोर के अनुसार स्वामी दयानन्द ने नये भारत के पथ का निर्माण किया और ऐसे सीधे तथा निष्कंटक रास्ते की ओर संकेत किया जिसमें हिन्दू धर्म के व्यक्ति सरल और विवेकपूर्ण जीवन चला सके। दयानन्द ने लोगों में स्वाभिमान की भावना जाग्रत की, उनको मानसिक रूप से चेताया, आगे अपने गौरवशाली अतीत के प्रति उत्साह जगाया और इन सभी बातों से भारतीय राष्ट्रवाद को सम्बल मिला। उन्होंने अपने ओजस्वी विचारों से देश को मानसिक जड़ता से मुक्ति दिलाने का अथक प्रयत्न किया। भारतीय राष्ट्रवाद के उत्थान की दिशा में यह एक बहुत ही दूरदर्शी और प्रेरणापूर्ण कदम था।

महर्षि दयानन्द ने "सत्यार्थ प्रकाश" में स्वराज्य का आदर्श रूप प्रस्तुत किया जिसने देशवासियों को प्रेरणा दी। उन्होंने देशवासियों का ध्यान इस ओर दिलाया कि भारत (आर्यावर्त) में भी इस समय आर्यों का अखण्ड, स्वतन्त्र, स्वाधीन और निर्भय राज्य नहीं है तथा जो कुछ भी है वह भी विदेशियों से पदाक्रान्त हो रहा है, उन्होंने कहा कि दुर्दिन जब आता है तब देशवासियों को अनेक प्रकार के दुःख भोगने पड़ते हैं। कोई कितना ही करे, लेकिन जो स्वदेशी राज्य होता होता है वह सर्वोपरि एवं सर्वोत्तम होता है। वे देश की स्वतन्त्रता के लिए इतने व्याकुल थे कि अपनी प्रार्थनाओं तक में वे यही कामना करते थे। अपनी पुस्तक "आर्याभिविनय" की प्रार्थनाओं में उन्होंने ईश्वर से यह कामना की है कि "दूसरे देशों के राजा हमारे देश में कभी न हों। और हम कभी पराधीन न हों", तथा "हम पर सहाय करो जिससे सुनीतियुक्त होकर हमारा स्वराज्य अत्यन्त बढ़े।"

स्वामी दयानन्द के लिए सम्पूर्ण भारत उनका घर था और प्रत्येक देशवासी के रूप में वे भारत की सेवा करने की जिज्ञासा और आकांक्षा रख देना चाहते थे। उनका कहना था कि इस देश की मिट्टी से पलकर ही हम इतने बड़े हुए हैं, अतः हमारा कर्तव्य है कि हम तन-मन-धन से अपने देश की सेवा ठीक उसी प्रकार करें जिस प्रकार वह हमारी सेवा मौन भाव से कर रहा है। भारत को एक सशक्त राष्ट्र देखने की इच्छा से, देश को निकट भविष्य में स्वतन्त्रता-प्राप्ति की राह पर दृढ़तापूर्वक गति देने के उद्देश्य से, दयानन्द ने कठोर जाति-प्रथा पर प्रहार किया और वृथकता तथा अस्पृश्यता पर चोट की। अतः उन्होंने सन्देश दिया कि यदि हमें व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप से प्रगति करनी है तो हमारे जीवन के नियमों और आदर्शों में परिवर्तन होना चाहिए। अस्पृश्यता के विरुद्ध उनका युद्ध भारत के लिए, भारत की एकता के लिए एक महान देन कही जायेगी।

राष्ट्रीय आन्दोलन में भारतीय राष्ट्रवाद के जागरण में स्वामी दयानन्द की एक महत्त्वपूर्ण देन यह थी कि उन्होंने उसी युग में भारत की एक सम्पर्क भाषा की कल्पना राष्ट्र भाषा के रूप में कर ली थी। गाँधीजी और सरदार पटेल से भी पहले स्वामी दयानन्द ने गुजरात में यह आवाज लगायी थी — देश की एकता के सूत्र में पिरोने के लिए हिन्दी का पूरे देश में प्रचलन आवश्यक है। स्वामीजी की मातृभाषा गुजराती थी और उनका अध्ययन संस्कृत के माध्यम से हुआ था, पर इतने पर भी उन्होंने अपने ग्रन्थों का माध्यम हिन्दी को ही चुना।